द्वितीय अध्याय

हिंदी एवं मराठी दलित आत्मकथा परम्परा

किसी भी समाज की सांस्कृतिक-सामाजिक परिस्थितियों को समझने के लिए उसके अतीत को जानने की आवश्यकता पड़ती है। भारत में समाज शब्द का प्रयोग धर्मों और जातियों के लिए किया जाता है। प्रत्येक समाज का अपना इतिहास होता है जिससे वह अतीत के हर एक स्वरूप की चर्चा करता है। दलित समाज का अपना इतिहास है। भले ही दलित समाज की चर्चा दलित विमर्श के रूप में समकालीन समय में हो रही हो, लेकिन उसका इतिहास तभी से होगा जब यह समाज अस्तित्व में आया। दलित समाज का कोई सुनियोजित इतिहास प्राप्त नहीं होता है परन्तु कई धार्मिक ग्रंथो, साहित्यिक कृतियों में इनका उल्लेख मिलता है। दलित समाज को जागृत करने, स्वाभिमान से जीवन जीने के लिए एवं मानवीय गरिमा दिलाने के लिए संघर्ष में कई महापुरुषों का योगदान है उनमें से ज्योतिबा फुले एवं डॉ.. भीमराव अम्बेडकर का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

'दलित' शब्द का अभिप्राय जिनको दबाया गया हो, जिसका उत्पीडन हुआ हो, जिसका शोषण हुआ हो, जिनको अधिकारों से वंचित कर दिया गया हो। डॉ.. श्योराज सिंह बेचैन कहते है कि "दलित वह है जिसे भारतीय संविधान ने अनुसूचित जाति का दर्जा दिया हो।"[1] कंवल भारती का मानना है कि "दलित वह है जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया है। जिसे कठोर और गंदे कार्य करने के लिए बाध्य किया गया है। जिसे शिक्षा ग्रहण करने और स्वतन्त्र व्यवसाय करने से मना किया गया और जिस पर अछूतों ने सामाजिक निर्योग्यताओं की संहिता लागू की, वही और वही दलित है, जिन्हें अनुसूचित जातियाँ कहा जाता है।"[2]

कंवल भारती के अनुसार दलित वह है जिनको समाज में अछूत समझा जाता है और उनसे कठोर कार्य एवं बेगार कराया गया है तथा शिक्षा एवं धन संग्रह से वंचित रखा गया है। शरण कुमार लिम्बाले 'दलित' शब्द की व्याख्या करते है कि "सर्वप्रथम दलित साहित्य में 'दलित' शब्द की

व्याख्या निश्चित करनी होगी। दलित केवल हरिजन और नवबौध्द नहीं। गाँव की सीमा के बाहर रहने वाली सभी अछूत जातियाँ आदिवासी, भूमिहीन, खेतमजदूर, श्रमिक, कष्ट्कारी जनता और यायावर जातियाँ सभी की सभी 'दलित' शब्द की परिभाषा में आती है। दलित शब्द की परिभाषा में केवल अछूत जाति का उल्लेख करने से नहीं चलेगा। इसमे आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए लोगों का भी समावेश करना होगा।"[3]

दलित शब्द का एक व्यापक अर्थ है लेकिन इसका जो वर्तमान समय में बहुत संकुचित स्तर पर प्रयोग हो रहा है, जिसमें इसको निम्न जाति के संदर्भ में लिया जा रहा है। दलित शब्द की परिभाषा में अनुसूचित जाति को ही माना जाता है। "अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के सदस्य, नवबौध्द, मजदूर लोग, भूमिहीन तथा गरीब कृषक महिलाएँ तथा वे सभी लोग जिन्हें धर्म के नाम पर एवं राजनैतिक तथा वे सभी लोग जिन्हें धर्म के नाम पर एवं राजनैतिक तथा आर्थिकतौर पर शोषित किया जा रहा है।"[4] महात्मा गाँधी ने दलितों को हरिजन शब्द से संबोधित करने को कहते है, लेकिन सभी दलित चिन्तकों एवं विचारकों ने इस शब्द को अपमानजनक माना और बाद में भारत सरकार ने इस शब्द के प्रयोग पर रोक लगा दी। भारतीय समाज व्यवस्था में जिसे अछूत घोषित किया गया है, उत्पीडित, शोषित एवं दबाया गया, सामाजिक अधिकारों से वंचित किया गया, जो जन्मना अछूत है और आर्थिक रूप से भी कमजोर है इसलिए उन्हें दलित कहा जाता है। भारतीय संविधान ने उन्हें अनुसूचित जाति का दर्जा दिया है।

सन 1947 ई. में आजादी के बाद भारतीय समाज में परिवर्तन हुए, भारत में लोकतंत्र आने के बाद आम आदमी के अधिकारों की बात की जाने लगी। दलित समाज समझने लगा कि वह भी स्वतन्त्र हो गए है। "जिन्हें गुलामी या दासत्व रास नहीं आया होगा, उन्होंने अवश्य ही संघर्ष किया होगा। अब यह सिध्द हो गया है कि दलितों के उसी संघर्ष से दलित साहित्य का जन्म हुआ है कुछ लोगों ने लिखा और कहा, दलित साहित्य वेदना और पीड़ा का साहित्य है। कुछ ने कहा, यह मुक्ति का साहित्य है। इस संबंध में हम ऐतिहासिक घटनाओं, दुर्घटनाओं का अध्ययन करें तो ऐसा मानना

चाहिए कि दलित साहित्य पीड़ा, वेदना, मुक्ति का साहित्य नहीं बल्कि अपने अधिकारों, अस्मिता और पहचान के लिए संघर्ष करने वालों का भी साहित्य है।"[5] दलित साहित्य उस व्यवस्था की देन है जिसमें मनुष्य को मनुष्य नहीं समझा जाता है। समाज के एक बड़े समुदाय को अस्पृश्य मान लिया जाता है। इस व्यवस्था में समाज के उच्च वर्ग को सभी सुविधायें दी जाती है, अधिकार दिये जाते हैं लेकिन निम्न वर्ग को समाज की व्यवस्था से वंचित कर दिया गया है उन्हें किसी भी अधिकार का भागीदार नहीं माना जाता है। इसका विरोध दलित समाज हमेशा से करता रहा है। वह समाज के परम्परागत एवं रूढिगत व्यवस्था के खिलाफ अपनी माँग करता रहता है। "ऐतिहासिक दबावों और सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों के फलस्वरूप साहित्य-जगत में नई धाराओं, प्रवृत्तियो, आन्दोलनों का उदय होता रहता है। साहित्य की गतिशीलता का यह सबसे बड़ा कारण है। किसी लेखक विशेष के कारण साहित्य में युगांतर नहीं होता। युगांतर होता है ठोस भौतिक परिस्थितियों में आने वाले परिवर्तनों के आधार पर।"[6] सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति के कारण साहित्य में परिवर्तन होता है कोई भी परिवर्तन या आन्दोलन बिना समय के माँग या परिस्थितियों को ध्यान में रखे बिना नहीं होता है। दलित साहित्य आन्दोलन की ही देन है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था ने समाज कई वर्गों में बाँट रखा था जिससे कई वर्षो से उच्च जातियाँ निम्न जातियों पर अन्याय एवं अत्याचार कर रहा है, जिसके फलस्वरूप आधुनिक काल में स्वतंत्रता, समानता एवं न्याय के लिए दलित समाज ने अभियान चलाया। "मानव-चेतना, नवचेतना जनजागृति साहित्य की आत्मा है। साहित्य का केंद्र बिंदु में मानव, मूल में मानव, परिधि में मानव ही है। अतः उसकी ही कथा, आत्मकथा है, मानव, उसका जीवन, समाज जीवन, मानवहित, समाजहित, मानव कल्याण ही इसका लक्ष्य रहा है। अपने लक्ष्य तक पहुँचाने के लिए मानव प्रयत्नशील रहता है, उसकी जो कथा निर्मित होती हैं, वह हिंदी की आत्मकथा हैं, जो ढेरों है।"[7] साहित्य किसी भी भाषा में रचा जायेगा तो उसके केंद्र में मनुष्य कल्याण की ही बात होगी। साहित्य की सभी विधाओं के केंद्र में मनुष्य और समाज को एक नई दिशा देने की बात की गई है। अनुभवों एवं विचारों को अभिव्यक्त करने का साहित्य एक

सशक्त माध्यम है। हिंदी साहित्य में रचना का सर्वप्रथम माध्यम काव्य ही था लेकिन आधुनिक समय में गद्य में भी रचना हो रही है, जिसमें उपन्यास, कहानी, नाटक, जीवनी, संस्मरण, आत्मकथा आदि विधाएँ साहित्य का अंग बनी। इसी क्रम में हिंदी साहित्य में कल्पना के साथ-साथ यथार्थ रूप भी आया, जिसमें आत्मकथा ने यथार्थवादी रूप में अपने आप को स्थापित किया। साहित्य हमेशा से ही यथार्थ और सच्चाई की माँग करता रहा है और आत्मकथा में ये दोनों तत्व मिलते है, साथ ही साथ आत्मकथा अपनी कथा के साथ-साथ समाज एवं उस समय की परिस्थितियों की भी बात करता है इसलिए हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में आत्मकथा विधा बहुत प्रचलित हुई। यह एक स्वतंत्र साहित्यिक विधा है। कुछ आलोचक इसे जीवनी का ही स्वरूप मानते है लेकिन आत्मकथा एवं जीवनी को एक विधा कहना उचित नहीं है। आधुनिक काल में इस विधा का उदय हुआ और रचनाकारों के द्वारा विकास प्रक्रिया आगे बढ़ी। "'आत्म' शब्द अपने साथ कर्म सिद्धांत लेकर आता है। कर्म सिद्धांत का संबंध वर्ण-व्यवस्था के साथ है।... यहाँ की संस्कृति ने आत्मा की अवधारणा द्वारा शोषण का ऐसा विलक्षण दर्शन, विषमता का जहरीला विचार-व्यूह भी प्रस्तुत किया है, जो विश्व के किसी भी देश या समाज में नहीं है। दलितों के शोषण की केंद्रवर्ती आधारशिला ही यह आत्मा-शब्द है। इस शब्द का प्रयोग दलितों के स्वकथन के साथ लगाना वास्तव में उनकी नास्तिक (बौद्ध) प्रेरणाओं का मजाक उड़ाना है। इस कारण दलितों के अनुभव कथन पर लेखक के लिए 'स्वकथन' शब्द का ही प्रयोग होना चाहिए।"[8] आत्मकथा में आत्म शब्द का आत्मा से कोई सरोकार नहीं है वह लेखक के व्यक्तित्व के अर्थ में प्रयोग होता है। कथा काल्पनिक कहानियों में होता है, लेकिन दलित जीवन में कथा यथार्थ और वेदनापूर्ण है। डॉ. रामचंद्र तिवारी ने 'हिंदी का गद्य-साहित्य' में दलित आत्मकथाओं के विषय में लिखा है कि "दलित लेखकों की आत्मकथाओं में उनके शताब्दियों से शोषित-दमित मन का दर्द, तल्खी और क्षोभ के रूप में व्यक्त हुआ है। यह कथाएँ साक्षी हैं कि आज भी हमारे समाज में सामंती संस्कार हावी हैं। जनतांत्रिक व्यवस्था, और सामाजिक समरसता की बात करने वाले हमारे देश के कर्णधारों की आँखें समय रहते न खुलीं तो इन लोगों का दर्द शोला बनकर

दहक सकता है।"[9] दलित समाज को ब्राह्मणवादी, सामंतवादी व्यवस्था ने जिस तरह से शोषण का शिकार बनाया है, अगर समय रहते इन पर ध्यान नहीं दिया गया तो लोकतांत्रिक व्यवस्था और सामाजिक समरसता की बात कहना इस समाज के लिए बेमानी हो जाएगा।

आत्मकथा में लेखक स्वयं के व्यक्तित्व का निरीक्षण करता है, और अपने बीते हुए जीवन की एक पृष्ठभूमि पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है। इस पूरी प्रक्रिया में मुश्किल यह होती है कि आत्मकथा लेखन की शैली किस प्रकार प्रस्तुत की जाए, क्योंकि अपने विषय में तटस्थ रहकर कुछ भी लिखना मुश्किल होता है इसके बावजूद आत्मकथाकार विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग करते हुए, अपनी जीवन-गाथा को सतर्कता के साथ पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है। आत्मकथा एक व्यक्ति की समस्त जीवन का इतिहास ही नहीं बल्कि उस में वर्णित घटनाओं की क्रिया एवं प्रतिक्रिया का भी अंकन है।

आधुनिक हिंदी साहित्य को गद्य विधाओं का विकास युग माना जाता है। उपन्यास, कहानी, निबंध, नाटक, जीवनी, संस्मरण, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, आत्मकथा आदि विधाएँ आधुनिक युग में विकसित हुई हैं। इनमें से कुछ ऐसी विधाएँ भी हैं, जिनके तत्व एक दूसरे से बहुत मेल खाते हैं। "श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने लिखा भी है- "संस्मरण, रेखाचित्र और आत्मचरित इन तीनों का एक दूसरे से इतना घनिष्ठ संबंध है कि एक की सीमा दूसरे से कहाँ मिलती है और कहाँ अलग हो जाती है, इसका निर्णय करना कठिन है।"[10] हिंदी साहित्य में आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण, रेखाचित्र इन विधाओं के तत्त्व एक जैसे मालूम पड़ते हैं, लेकिन इनमें भी भिन्नताएँ होती हैं, और इन्हीं आधारों पर इनका वर्गीकरण भी किया गया है। "जीवनी: जब कोई लेखक किसी विशेष व्यक्ति के जीवन की वास्तविक घटनाओं एवं परिस्थितियों का कलात्मक रूप से वर्णन करता है तो साहित्य का वह रूप जीवनी कहलाता है। 'जीवनी साहित्य' का भवन अनुभूति और साक्षात्कृत सात्यों की आधारशिला पर प्रतिष्ठित है। जीवन में स्वप्न जिस सीमा तक यथार्थ में ढल चुका है, अभिव्यक्त हुआ है, उसी सीमा तक जीवन-साहित्य उसका वाहक बनता है। अनुभव की सीमा में न अँटने वाला यथार्थ जीवन-

साहित्य सृष्टि की दृष्टि में मिथ्या से भिन्न नहीं होता है। जीवन के निष्कर्ष पर अपनी विशुद्धि प्रमाणित न कर पाने वाला सत्य जीवनी साहित्य के लिए अभिनंदनीय नहीं होता।"[11] जीवनी साहित्य किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किसी महापुरुष के विषय में लिखा जाता है, जिससे जनता उससे प्रेरणा प्राप्त कर सके। इसी के कारण रचनाकार जीवन के कई ऐसे प्रसंगों को छोड़ देता है जिससे वह मनुष्य स्वरूप नहीं व्यवहार करता है, और उनकी प्रशंसा में उसे देवतुल्य बना देता है। जीवनी लेखक के लिए यह आवश्यक है कि वह तटस्थ रहकर जीवनीकार के दोनों चरित्र स्थितियों का चित्रण करें। जीवन-चरित्र की एक समस्या यह भी है कि लेखक जीवनीकार के विषय में जो देख पाते हैं और जो लोगों के द्वारा बताया जाता हैं उन्हीं का वर्णन करते हैं बाकी पक्ष छूट जाता है। आत्मकथा लेखन की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि रचनाकार स्वयं अपनी संपूर्ण जीवन-गाथा कहता है और अपनी उन घटनाओं का विश्लेषण स्वयं करने के बाद पाठकों पर छोड़ देता है।

आधुनिक हिंदी की अन्य गद्य विधाओं में रेखाचित्र भी एक नवीन गद्य विधा है। 'रेखाचित्र में भी किसी व्यक्ति, वस्तु या संदर्भ का अंकन किया जाता है। यह अंकन पूर्ण तरह पूर्णत: तटस्थ भाव से निर्लिप्त रहकर किया जाता है। रेखाचित्र में रेखाएँ बोलती हैं। जिस प्रकार कुछ थोड़ी-सी रेखाओं का प्रयोग करके रेखाचित्रकार किसी व्यक्ति या वस्तु की मूलभूत विशेषता को उभार देता है, उसी प्रकार कुछ थोड़े से शब्दों का प्रयोग करके साहित्यकार किसी व्यक्ति या वस्तु को उसकी मूलभूत विशेषता के साथ सजीव कर देता है। रेखांकन करते समय वह अपने को तटस्थ रखने की चेष्टा करता है। वस्तु को ही महत्व देता है। विषय को ही रूपायित करता है जब कभी उसकी तटस्थता भंग होती है, तो रंगों की चटक में रेखाएँ डूब जाती है।"[12] इस विधा को 'शब्द चित्र' के नाम से भी जाना जाता है। चित्रों का सहारा लेकर लेखक किसी भी व्यक्ति अथवा घटना का चित्रण करता है इसलिए इसे रेखाचित्र कहते हैं। शब्दों में यह ताकत विद्यान रहती है जिसके माध्यम से किसी घटना को सजीव रूप दिया जाता है।

"संस्मरण किसी स्मर्यमाण की स्मृति का शब्दांकन है। स्मर्यमाण के जीवन के वे पहलू, वे संदर्भ और वे चारित्रिक वैशिष्ट्य जो स्मरणकर्ता को स्मृत रह जाते हैं, उन्हें वह शब्दांकित करता है। स्मरण वही रह जाता है, जो महत्, विशिष्ट, विचित्र और प्रिय हो। स्मर्यमाण को अंकित करते हुए लेखक स्वयं भी अंकित होता चलता है। संस्मरण में विषय और विषयि दोनों ही रूपायित होते हैं। इसलिए इसमें स्मरणकर्ता पूर्णत: तटस्थ नहीं पाता। वह अपने को 'स्व' का पुनः सर्जन करता है।"[13] इस विधा में रचनाकार अपनी स्मरण शक्ति के द्वारा जो भी बातें उसे याद रह जाती हैं वह व्यक्त करता है। व्यक्ति को याद वही घटना रह जाती है जो विशेष और विचित्र हो, बाकी अन्य सामान्य घटनाएँ व्यक्ति भूल जाता है। इस आधार पर इसमें रचनाकार की संस्मरण शक्ति का प्रयोग ज्यादा होता है इससे लेखक के स्वभाव एवं रुचि का भी पता चलता है। आत्मकथा स्वयं द्वारा लिखी हुई रचना होती है, जिसमें व्यक्ति अपनी समग्र जीवन-गाथा का वर्णन करता है। वह अपने पूरे जीवन के संपूर्ण घटनाओं का एक कच्चा चिट्ठा रखता है, कच्चे चिट्ठे से अभिप्राय है आत्मकथाकार केवल अपने सुख की घटनाओं का ही नहीं बल्कि दुख एवं शोक की घटनाओं को भी पूर्ण स्थान देता है। वह निसंकोच भाव से अपने संपूर्ण जीवन को प्रस्तुत करता है। "आत्मकथाकार का मुख्य विषय अपनी बीती हुई जिंदगी का फिर से व्यक्तीकरण करना ही होता है, इसलिए वर्ण्य विषय आत्मकथा का प्रमुख तत्त्व स्वीकार किया गया है। आत्मकथा लेखक के व्यक्तित्व के अनुरूप ही विषय का प्रस्तुतीकरण होता है। यदि आत्मकथाकार साहित्यिक है, तो उसकी आत्मकथा में तत्कालीन साहित्य की परिस्थितियों का भी वर्णन होगा। इसी प्रकार यदि आत्मकथा लेखक सामाजिक है, तो उसकी आत्मकथा में सामाजिक परिस्थितियों का अंकन होगा। यही बात धार्मिक व्यक्ति की आत्मकथा के संबंध में भी है। कहने का आशय यह है कि आत्मकथाकार का तत्कालीन परिस्थिति से कोई मतलब नहीं होता किंतु चूँकि वह भी एक सामाजिक प्राणी होता है, इसलिए अप्रत्यक्ष रूप से उसकी कृति में परिस्थिति का मूल्यांकन हो जाता है।"[14] आत्मकथा विधा में सत्यता और यथार्थ का प्रमुख गुण का विषय काल्पनिक न होकर वास्तविक होता है। आत्मकथा में रोचकता का भाव भी दिखाई देता है, और दलित आत्मकथा में यह

अवश्य दिखाई देती है कि जिससे वह अपने अतीत की घटनाओं का वर्णन करते हैं। जिसको पाठक रुचि के साथ पढ़ता है। आत्मकथा में चरित्र-चित्रण के साथ रचनाकार अपने जीवन-चरित्र का वर्णन करता है, साथ ही साथ अपने से संबंध रखने वाले व्यक्तियों के भी चरित्र पर प्रकाश डालता है। इस प्रवृत्ति से दो लाभ होते हैं- एक तो लेखक की व्यक्तित्व स्पष्ट हो जाता है। दूसरा- उस व्यक्ति के विषय में पाठक को पता चल जाता है जो उस के पात्र होते हैं। हिंदी गद्य विधाओं में देशकाल एवं वातावरण का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, जिसमें रचनाकार अपने परिवेश एवं अपने चारों तरफ फैली हुई परिस्थितियों का वर्णन करता है। आत्मकथाकार अपने जीवन संघर्षों और उन परिस्थितियों से कैसे लड़ता है, जूझता है, और अपनी जिंदगी कैसे व्यतीत करता है, इन्हीं परिस्थितियों से लड़कर लेखक अपने व्यक्तित्व को निखारता है। 'देशकाल' वातावरण में दोनों स्थितियाँ होती हैं। रचनाकार को यह दोनों स्थितियों के बारे में जानकारी होनी चाहिए और उनका वर्णन अपनी रचना में करना चाहिए। आत्मकथा साहित्य हिंदी का एक उद्देश्यपूर्ण विधा है। दलित आत्मकथाकारों का उद्देश्य सामाजिक समरसता, लोकतांत्रिक समाज और शोषण मुक्तसमाज बनाना है इसलिए दलित आत्मकथाएँ प्रेरणा के स्वरूप में देखी जाती हैं। वह बहुतायत मात्रा में लिखी भी जा रही आत्मकथा की भाषा का प्रश्न जहाँ तक है, भावनाओं को व्यक्त करने के लिए भाषा ही माध्यम है। आत्मकथा लेखन के लिए सरल, स्पष्ट एवं भावानुकूल भाषा का प्रयोग होता है, जिससे आत्मकथा सजीव हो जाती है और अधिक मात्रा में पाठक को प्रभावित करती है। आत्मकथा की शैली प्रभावपूर्ण हो जिससे पाठक को पढ़ने में रोचकता उत्पन्न हो। इस प्रकार भाषा-शैली में भाषा के शब्द पर वाक्य उक्त शैलियों के विभिन्न रूप आदि का क्षेत्र सम्मिलित होता है, बिना भाषा और शैली के आत्मकथा की रचना संभव ही नहीं है।

आत्मकथा लेखन बहुत ही सच्चाई और ईमानदारी की माँग करता है जिसमें व्यक्ति अपनी प्रिय बातों के साथ-साथ अप्रिय बातों की चर्चा करता है। अधिकतर रचनाकार अपनी जीवन की प्रेम और युवा समय से संबंधित बातों को बताने से संकोच करते हैं लेकिन आत्मकथा लेखन में सम्पूर्ण घटनाक्रम का वर्णन मिलता है, जिससे घटना को यथार्थ रूप देता है तभी वह आत्मकथा विधा के

साथ न्याय कर पाता है। आत्मकथाकार जब भी अपने जीवन की घटनाओं को लिपिबद्ध करता है तो उसमें ऐतिहासिकता का पुट आना स्वाभाविक है इसलिए रचनाकार को अपने जीवन में किसी घटना या आंदोलन के संपर्क में है तो उसका वर्णन अपनी रचना में अवश्य करना चाहिए। जिससे आने वाली पीढ़ियाँ उसकी रोचकता और उपयोगिता को जान सकें और उस समय की मनोवृत्ति को समझ सके। आत्मकथात्मक शैली की सबसे बड़ी विशेषता उसकी विश्वसनीयता और प्रमाणिकता है अगर यही दोनों निकाल दिये जायें तो यह कहानी या उपन्यास की विधा के रूप में स्थापित हो जायेंगे। भाषाई रूप में देखेंगे तो आत्मकथाकार जिस परिवेश में रहता है उस परिवेश की भाषा का पुट उस आत्मकथा में जरूर होता है जिससे उस समय की भाषा और भाषा में आ रहे परिवर्तनों को देखा जा सके और समझा जा सके। आत्मकथाकार का लिखने का मुख्य उद्देश्य होता है उसका आत्मपरीक्षण या आत्म निरीक्षण करना और वह आगे आने वाली पीढ़ियों के लिए उदाहरण और एक रास्ता बना सके, जिससे कि आगे आने वाली पीढ़ियां उस रास्ते पर चले। आत्मकथा का मुख्य उद्देश्य समाज के अंतर्गत धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक परिवर्तनों का अध्ययन करना भी एक मुख्य कार्य माना जा सकता है जिससे आगे आने वाले लोगों के लिए उस समस्या या उस समय को समझना आसान हो जायें।

आत्मकथा साहित्य की विधा होने के साथ-साथ अपने आप में भी उसके कई प्रकार हैं धार्मिक व्यक्तियों की आत्मकथा, दूसरे मनुष्यों को प्रेरित करने के लिए याद कथाएँ लिखी जाती हैं और हिंदी में राजनैतिक आत्मकथाएँ भी लिखी गई है। राजनैतिक नेता अपने जीवन संघर्ष में राष्ट्रीय समस्याओं का चित्रण करने के लिए आत्मकथा की रचना करता है जिसे हम राजनीतिक व्यक्तियों की आत्मकथा कहते हैं जो हिंदी में बहुत लोकप्रिय हुई है साहित्यकारों ने भी आत्मकथाएँ लिखी हैं जो की बहुत ही रोचक है, जिसमें साहित्यकार ने अपने व्यक्तिगत जीवन के साथ-साथ सामाजिक एवं साहित्यिक जीवन की चर्चा भी की है इस आधार पर देखें तो आत्मकथा धार्मिक, राजनीतिक, साहित्यिक आत्मकथा लेखन देखने को मिलता है।

2.1 हिंदी आत्मकथा परम्परा में दलित आत्मकथाएँ:

आत्मकथा की परम्परा समझाने से पहले आत्मकथा के विषय में जानना आवश्यक है। हिंदी साहित्य कोश में आत्मकथा को परिभाषित किया गया है- "आत्मकथा लेखक के अपने जीवन से सम्बद्ध वर्णन है। आत्मकथा के द्वारा अपने बीते हुए जीवन का सिंहावलोकन और एक व्यापक पृष्ठभूमि में अपने जीवन का महत्व दिखलाया जाना संभव है।"[15] आत्मकथा में लेखक अपने जीवन के सभी पहलू का वर्णन और पूरे जीवन का विवेचन भी देखने को मिलता है। बृहत हिंदी कोश में आत्मकथा का वर्णन इस प्रकार मिलता है- "अपनी जीवन कहानी, स्वलिखित जीवन-चरित्र।"[16] अपने जीवन की कहानी का मूल्यांकन का अवसर भी आत्मकथा देती है, जिससे आने वाले समय में समाज उससे दिशा प्राप्त कर सके। बाबू गुलाब राय ने आत्मकथा को परिभाषित करते हुए लिखा है कि-"आत्मकथा लेखक जितना अपने बारे में जान सकता है, उतना लाख प्रयत्न करने पर भी कोई दूसरा नहीं जान सकता। परंतु इसमें कहीं तो स्वाभाविक आत्मश्लाघा की प्रवृत्ति बाधक होती है और किसी के साथ शील-संकोच आत्मप्रकाश में रुकावट डाल देता है। यद्यपि सत्य की आदर्श से दोनों की प्रवृत्तियां निंद्य हैं, तथापि आत्मविचार कुछ अधिक अवांछनीय है।"[17]

डॉ. शांति स्वरूप गुप्ता "आत्मकथा लिखना सुखद कार्य तो है क्योंकि उसमें व्यक्ति को अपने विषय में कहने का अवसर मिलता है। पर वह कठिन इसलिए है कि उसमें लेखक को निष्पक्ष होना पड़ता है कटु सत्यों का उद्घाटन करना पड़ता है, अपने दोषों को प्रस्तुत करना पड़ता है बस आज कार्य नहीं है।"[18] आत्मकथा लेखन अपने पुराने समय को जीने का एक अवसर देता है लेकिन यह कार्य बहुत ही कठिन होता है क्योंकि हमें अपने विषय में जो कुछ भी छिपाया होता है उसका भी उल्लेख करना पड़ता है ज्यादातर घटना व्यक्ति के सामाजिक प्रतिष्ठा में चोट करने वाली होती है जिनको सभी उजागर नहीं करना चाहते है लेकिन आत्मकथा यह माँग करती है कि जीवन की सभी घटना का उल्लेख लेखक करे इसलिए यह विधा लेखक के लिए मुश्किल प्रतीत होती है। डॉ. नगेंद्र ने कहा है कि- "जब कोई व्यक्ति अपनी जीवनी स्वयं लिखता है, तब उसे आत्मकथा कहते हैं।"[19]

आत्मकथा आधुनिक काल की विधा नहीं बल्कि मध्यकाल में ही बनारसीदास जैन ने 1641ई. में 'अर्द्धकथा' पद्यात्मक शैली में ही आत्मकथा लिखी थी। पर बाद के समय में यह विधा भारतेंदु युग में आकर अपने स्वरूप को प्राप्त करती है। "पाश्चात्य साहित्य में उपलब्ध आत्मकथा की जानकारी के अनुसार अंग्रेजी लेखक डेक्किन्सी (कन्फेशन्स ऑफ अन इंग्लिश ओपियम इंटर ,1822) तथा फ्रेंच लेखक आलफ्रेड द म्युसे (1836, इं. शी. कन्फेशन्स ऑफ अ चाइल्ड ऑफ द सेंच्यूरी) इन लेखकों ने सबसे पहले पाश्चात्य साहित्य में आत्मकथाएँ लिखने की नींव, परम्परा प्रारंभ की है। इसके बाद फिर कई लेखकों ने अपने-अपने जिंदगी की आत्मकथा लिखने की शुरुआत की। जॉन बन्यन का 'ग्रेस आबउडींग टू द चीफ ऑफ सिनर्स (1666) रिचर्ड बक्टर का Religuiae Baxterianae (1696) और केकर पंथीय जार्ज फाक्स की आत्मकथा (1694) जैसी में आध्यात्मिक आत्मकथन उपलब्ध है, जिसमें काफी ईमानदारी है।"[20] अंग्रेजी साहित्य की अन्य आत्मकथा कवि ली हंट (1950), चित्रकार हेडन (1853), अंग्रेजी दार्शनिक जे. एस. मिल (1973) उपन्यासकार अंथनी ट्रूलप (1883), डार्विन चार्ल्स (1887), गोर्गी की आत्मकथा तीन भागों में है लेकिन प्रत्येक भाग स्वतंत्र है। पहला भाग 'मेरा बचपन' दूसरा भाग 'जनता के बीच' और तीसरा भाग 'मेरे विश्वविद्यालय'। भारत में भी कई भाषाओ में आत्मकथा लिखी गई, जिसमे महात्मा गाँधी की आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग', स्वामी दयानंद लिखित 'जीवन यात्रा', राहुल सांकृत्यायन लिखित 'मेरी जीवनयात्रा', डॉ.. राजेंद्र प्रसाद कृत 'आत्मकथा', पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र की 'अपनी खबर' आत्मकथाएँ कही जा सकती है। प्रसिद्ध कथाकार यशपाल की आत्मकथा 'सिंहावलोकन' तीन भागों में क्रमश: सन 1952, 1955 तथा 1959 में प्रकाशित हुए। उनकी इस आत्मकथा में व्यक्तिगत जीवन के साथ क्रांतिकारी दल का वर्णन भी मिलता है। स्वामी सत्यदेव परिव्राजक की आत्मकथा 'स्वतंत्रता की खोज में' (1959) नेत्रहीन व्यक्ति साधनहीन होने पर भी मानवीय स्वतंत्रता के प्रचार प्रसार के लिए कष्ट सहन करते हुए देश-विदेश की यात्रा की। देवेन्द्र सत्यार्थी की आत्मकथा दो भागो 'चाँद सूरज के वीरन' तथा 'निलयक्षिणी' में प्रकाशित हुआ है। पहले भाग में अपने बचपन, शिक्षा संबंधी

तथा साहित्यिक जीवन के अंश को उल्लेखित किया है, दूसरे भाग में पढाई के बाद का वर्णन मिलता है। नाटककार सेठ गोविंददास ने 'आत्मनिरीक्षण' आत्मकथा में महात्मा गाँधी और जवाहर लाल नेहरू के विचारों की आलोचना करने में भी झिझक नहीं दिखाई है। तो इस प्रकार यह कहा जा सकत है कि विश्वभर में अनेक देशों और अनेक भाषाओं में आत्मकथाएँ लिखी गई है। हिंदी भाषा में भी आत्मकथा की अपनी एक समृध्द और प्रभावशाली साहित्यिक चेतना के दर्शन होते है। देवराज उपाध्याय की आत्मकथा 'बचपन की दो दिन' तथा 'यौवन के द्वार पर' दो भागों में प्रकाशित हुई है इस कृत्य में लेखक ने मनोविश्लेषण के आधार पर अपने जीवन की प्रवृत्तियों को देखा है निबंधकार पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने 'मेरी अपनी कथा' में अपने जीवन के क्रम एवं अपने समय के साहित्य एवं साहित्यकारों और साहित्यिक पर विषयों पर प्रकाश डाला है हिंदी के लोकप्रिय कवि डॉ. हरिवंश राय बच्चन की आत्मकथा 'क्या भूलूं क्या याद करूं' तथा 'नीड का निर्माण फिर' दो भागों में प्रकाशित हुई। इसके बाद 'बसेरे से दूर' तथा 'दशद्वार से सोपान तक' आत्मकथा के दो भाग और प्रकाशित हुए 'दशद्वार से सोपान तक' के लिए बच्चन जी को 'सरस्वती पुरस्कार' से सम्मानित किया गया था। वृंदावन लाल वर्मा की 'अपनी कहानी' उनके जीवन संघर्ष की कथा दर्शाती है। कृष्ण चंद की आत्मकथा 'आधे सफर की पूरी कहानी' इसमें लेखक ने अपने जीवन के साथ-साथ देश की परिस्थितियों को एक साथ प्रस्तुत किया है। रामदरश मिश्र की आत्मकथा 'जहां मैं खड़ा हूँ' प्रकाशित हुई जिसमें लेखक ने पूर्वी उत्तर प्रदेश के गाँव की जिंदगी ज्यों की त्यों दिखाई है। हंसराज रहबर की आत्मकथा 'मेरे साथ जन' के अब तक 2 खंड प्रकाशित हो चुके हैं। अपने जीवन के बहाने पंजाब के धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक परिवेश के विस्तार को अंकित किया है। नरदेव शास्त्री कृत 'आप बीती जग बीती' की खूबी यह है कि भारतीय समाज पर आर्य समाज के विभिन्न प्रभावों को रेखांकित करती है। मोरारजी देसाई की आत्मकथा तीन भागों में प्रकाशित हुई जिसमें दो भाग 'मेरा जीवन वृतांत'में प्रकाशित हुई, हिंदी तथा अंग्रेजी में एक साथ प्रकाशित हुए तथा तीसरा भाग केवल अंग्रेजी में प्रकाशित हुआ। लेखक ने निजी जीवन के साथ-साथ भारतीय उपमहाद्वीप की

राजनीतिक हलचल की भी चर्चा प्रस्तुत की है। भारतीय लेखकों में के एम मुंशी, काका कालेकर, विनायक दामोदर, सावरकर, डॉ. राधाकृष्णन, अबुल कलाम आजाद, रवींद्राथ ठाकुर, वेद मेहता, जोश मलीहाबादी, अमृता प्रीतम, कमला दास, मिल्खा सिंह, मोहम्मद यूनुस, बलवंत गार्गी तथा करतार सिंह दुग्गल, करण सिंह आदि ने अपनी आत्मकथा लिखी है, तथा विदेशी लेखकों में हिटलर, टॉलस्टॉय, हेलेन, केलर खान की आत्मकथाएँ उल्लेखनीय है।

आत्मकथा सामाजिक जीवन एवं संस्कृति को विश्लेषित करती है। आत्मकथा भी अन्य विधाओं की भांति साहित्यिक मूल्य लिए हुए है अतः इसका भी तात्विक विवेचन होना आवश्यक हो जाता है। आत्मकथाओं के तत्वों के संबंध में डॉ.. सरजू प्रसाद मिश्र लिखते है कि "आत्मकथा में 'आत्म' तत्व सर्वोपरि होता है यों तो गद्य-पद्य की सभी विधाओं में यह तत्व अंतर्धारा के रूप में बसा रहता है लेकिन गद्य की सर्वाधिक लोकप्रिय होती जाती विधा आत्मकथा का तो सारा दारोमदार इसी पर टिका रहता है। इस विधा की तो प्रतिज्ञा ही है कि 'सच, सच के सिवा कुछ भी नहीं। जिसमें सच कहने का साहस जितना ज्यादा होती है उसकी आत्मकथा उतनी ही श्रेष्ठ होती है।"[21] आत्मकथा में आत्म तत्व प्रमुख होता है जिसमें लेखक आत्मकथा का नायक होता है। पाठक लेखक के जीवन से संबंधित संघर्षों एवं घटनाओं को विस्तार से जानना चाहता है। घटनाओं एवं संघर्षों के बीच लेखक का चरित्र उभरकर सामने आता है, लेकिन लेखक को अपने जीवन की किसी भी घटना को बताने में संकोच नहीं करना चाहिए। आत्मकथा में आत्मतत्व के बाद कथातत्व आता है। कथा में वास्तविकता एवं यथार्थ ज्यों का त्यों रखना आवश्यक होता है। जब कभी लेखक अपने जीवन के महत्त्वपूर्ण प्रसंगों को कल्पना के माध्यम से अंकित करता है तो वह उपन्यास की श्रेणी में आती है। "आत्म तत्व के साथ तटस्थता का होना आत्मकथाओं की सृष्टि के लिए आवश्यक है। कथाकार कहानियों की रचना करने के लिए अपने द्वारा सृजित पात्रों को पूरी तरह से स्वयं के जीवन में मिलकर-जोड़कर सम्पूर्णता के साथ प्रस्तुत करता है और अपने और पराए के भेद को समाप्त कर पात्र के साथ एकरस और एकाकार हो जाता है। लेकिन आत्मकथा की रचना करते समय लेखक को बहुत हद तक स्वयं के प्रति

भी तटस्थ होना पड़ता है।"[22] आत्मकथा में परिवेश भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है क्योंकि किसी का भी जीवन परिवेश के माध्यम से तय होता है। परिवेश के भी कई रूप है- पारिवारिक, वर्ग, सांस्कृतिक, भौगोलिक। पारिवारिक परिवेश में व्यक्ति के जन्म से लेकर लेखन कार्य तक की पूरे जीवन में किस प्रकार उसका परिवार उसको प्रभावित करता है। भारतीय समाज मुख्यतः तीन वर्गों में विभाजित है, उच्च वर्ग, माध्यम वर्ग, निम्न वर्ग। लेखन जिस वर्ग से होता है उसके लेखन में उसका दार्शनिक पक्ष सामने आता है। देशकाल, काल और वातावरण में लेखक अपने भौगोलिक स्थिति से भी समस्या होती है, और वह आत्मकथा में प्रमुख रूप से आती है।

हिंदी आत्मकथा के आरम्भिक रूप की बात की जाये तो साहित्य में वैयक्तिक अनुभवों की बहुलता है। हिंदी में आत्मकथा लेखन की परम्परा बहुत पुरानी तो नहीं है लेकिन शिल्प एवं कथ्य के प्रतिमानों को पूरा करते है। इसमें हरिवंश राय बच्चन की आत्मकथा 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' 'नीड़ का निर्माण फिर' 'बसेरे से दूर' 'दशद्वार से सोपान तक' हिंदी साहित्य के लिए मील का पत्थर साबित हुई। इसके लिए बच्चन जी को 'सरस्वती सम्मन' भी दिया गया। हिंदी साहित्य की अन्य आत्मकथाएँ जिसमे डॉ.. देवराज उपाध्याय की 'यौवन के पार द्वार', वृन्दावनलाल वर्मा की 'अपनी कहानी' बलराज साहनी की 'मेरी फ़िल्मी आत्मकथा' डॉ.. राम विलास शर्मा की 'घर की बात' शिव पूजन सहाय की आत्मकथा 'मेरा जीवन' फणीश्वरनाथ रेणु लिखित 'आत्मपरिचय' उल्लेखनीय है जिसने हिंदी के आत्मकथा लेखन की भूमि तैयार की।

दलित आत्मकथा के लिए दलित साहित्य का अपने अधिकार एवं अस्मिता के प्रति जागरूकता पैदा करने को मुख्य माना है। दलितों में अपने अधिकार के प्रति चेतना पैदा हुई उसको लेखन के माध्यम से समाज के उच्च वर्ग की सच्चाई को सामने रखा है। हजारों वर्षो से सवर्णों ने दलितों का शोषण किया एवं उनसे बेगार कराया। "बेशक, दलित आत्मकथाओं ने अपना प्रयोजन सिध्द किया। ये अपने समाज का प्रमाणिक आईना बनीं, अत्याचारों और दु:खो का विश्वसनीय दस्तावेज। दलित सोच को दिशा देने, दलित चिंतन को आगे बढ़ाने में भी इसकी खासी भूमिका है।

समूचे भारत में दलित साहित्य आन्दोलन की पहचान बहुत कुछ इन आत्मकथाओं ने बनाई है। हिंदी क्षेत्र में, हालाँकि चर्चा तो बहुत हुई, पर दलित आत्मकथाओं की संख्या बहुत कम है। बेहतर आत्मकथाओं की अभी बहुत जरुरत है। स्मृतियों की चित्तवृतियों का प्रतिबिम्ब करने, व्यक्ति के वैशिष्ट्य को उभारने और स्वस्थ लोकतान्त्रिक समाज का प्रारूप रचने में आत्मकथा लेखन की सार्थक भूमिका हो सकती है, होती है।"[23] हिंदी में किसी न किसी रूप में फिर चाहे वह कविता या पद ही क्यों न हो, आत्मकथ्य की उपस्थिति मिलती है। दलित लेखन की उपेक्षा करते रहने के कारण दलित लेखन मुख्यधारा में नहीं था। आज दलित आत्मकथा लेखन अपने उत्कर्ष पर है। लेखन के निरंतर विकास के लिए यहाँ तक की यात्रा में की महत्त्वपूर्ण स्थान आये हैं। हिंदी आत्मकथा की विकास यात्रा में बहुत सी आज प्रेरक आत्मकथाएँ हमारे सामने आई हैं जिन्हें शिल्प, प्रस्तुतीकरण, पठनीयता, यथार्थ, वास्तविकता और व्यक्तिगत जीवन का सच सामने लाने का साहस आदि कसौटियों पर खरी उतरी है। डॉ.. बापूराव देसाई ने आत्मकथाओं के लिए कुछ मानदंड निश्चित करने का प्रयास किया है जैसे कि "आत्मकथा में कल्पना विस्तार न हो, अतिशयोक्तिया प्रन्शासत्मक लेखन न हो, आत्ममोह का त्याग हो, सच और गहन आत्मपरीक्षण के साथ लिखी गई हों तथा उसमें आत्मलोचन के साथ स्वयं के प्रति निर्ममता बनाये रखी गई हो।"[24] आत्मकथा लेखन को साहित्य के साथ-साथ इतिहास के दस्तावेज के रूप में भी देखा जाना चाहिए, इसीलिए आत्मकथा को सामाजिक एवं धार्मिक स्थितियों की यथार्थ की परख के रूप में लिखा जाना चाहिए। आत्मकथा को उसके उत्कर्ष रूप में ले जाने में उपरोक्त प्रतिमानों का मुख्य स्थान है। आत्मकथा विधा को उन्नत करने के प्रयास हमेशा से ही साहित्य में हो रहा है मुख्यधारा के साहित्यकार अपनी आत्मकथा के विषय में लिख रहे है लेकिन भारतीय समाज में वर्ग, जाति, लिंग के आधार पर हमेशा से शोषण होता रहा है और शोषितों को उनके अधिकारों से वंचित किया जाता रहा है। वंचित समाज के लोगों को लेखन का भी अधिकार नहीं था। आजादी के बाद साहित्य में क्रांतिकारी दौर आया जिसमे दलित लेखन ,स्त्री लेखन ने भी साहित्य लेखन में उपस्थिति दर्ज कराई।

दलित और स्त्री लेखन की शुरुआत साहित्य में होती है तो उसके सामने कई प्रश्न खड़े होते है कि "पहली, वर्णवाद के पारस्परिक शास्त्रीय रूप के साथ उसके समकालीन रूपों और नए का संज्ञान लेना तथा प्रतिरोध की एक मुकम्मल और दीर्धकालीन योजना तैयार करना। दूसरी, पितृसत्ता की मजबूती को पहचानते हुए उसके विरुध्द सशक्त अभियान चलाना और दलित समाज के भीतर इसकी व्यक्ति को स्वीकारते हुए उत्पीड़ित दलित-स्त्री के पक्ष में खड़ा होना। और तीसरी, उन तमाम दलित समुदायों के बीच जाति की जकडबंदी को खुले मन से समझाने की कोशिश करना, उसे अपने व्यापक मूल लक्ष्य में शामिल मनाकर विमर्श का हिस्सा बनाना।"[25] दलित आत्मकथाएँ केवल उनके लेखकों के जीवन के तथ्यों - सत्यों, घटनाओं का व्यौरा देने वाली रचना नहीं है, बल्कि यह भारतीय समाज और विशेषकर हिन्दू समाज में व्याप्त ऊँच-नीच, जातिगत पूर्वाग्रहों एवं घृणा को उदघाटित करने वाली रचनाएँ है। दलित आत्मकथाएँ शोषण, वेदना, पीड़ा, आदि का ही साहित्य नहीं है बल्कि वह अपनी अस्मिता, अपने अधिकार के लिए संघर्ष का साहित्य है। दलित चिंतको के लिए, दलित समाज, दलित आंदोलनों तथा दलितों के बारे में जानने के लिए ये आत्मकथाएँ महत्त्वपूर्ण हैं जिनसे समाजशास्त्री, दार्शनिक, राजनेता तथा सवर्ण एवं ब्राह्मणवादी मानसिकता के लोगो की सोच में परिवर्तन लाया जा सके। ये आत्मकथाएँ किसी व्यक्ति विशेष की जीवन की घटनाओ का विवरण मात्र नहीं है, बल्कि आलोचनात्मक दृष्टि से अनुभवों व घटनाओ का सर्जनात्मक संयोजन हैं।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था ही वर्ण आधारित रही है जिसको दलित लेखकों ने पहचान कर उसका विरोध दर्ज किया लेकिन यह व्यवस्था दलित समाज में भी थी तो दलित रचनाकार ने अपने समाज के जाति व्यवस्था को उजागर किया है और अम्बेडकरवादी तरीके से दूर करने के सुझाव भी दिये। स्त्रिओं को हमेशा से ही दोयम दर्जे का समझा जाता रहा है दलित समाज के भीतर भी महिलाएँ शोषण एवं उत्पीड़न की शिकार रही है। "स्वयं दलित विमर्श भी दलित स्त्री की पीड़ा की अनदेखी क्यों कर रहा है। वह दलित स्त्री के संदर्भ में पुरुषवादी वर्चस्व को कहीं न कहीं मौन सहमति देता है। दलित स्त्री के कठोर श्रम, अशिक्षा, सामाजिक व घरेलू शोषण पर दोहरे मानदंड अपनाए गये हैं। यह

स्थिति दलित विमर्श की मानववादी विचारधारा को आत्मावलोकन की आवश्यकता जताती है।"[26] मुख्यधारा की स्त्री का शोषण महिला होने के आधार पर होता है लेकिन दलित स्त्रिओं का शोषण दोहरा शोषण होता है एक तो दलित होने पर दूसरे महिला। दलित समाज में जो अंतर है उस पर तो खुल कर बात करता है लेकिन जो दलित समाज के भीतर जाति व्यवस्था और महिलाओं का शोषण है उस पर कुछ भी बोलने या लिखने से कन्नी काट लेता है, लेकिन आत्मकथाओं के माध्यम से यह विषय भी सामने आ रहा है।

हिंदी में दलित आत्मकथाओं की शुरुआत नौवे दशक में राज किशोर द्वारा सम्पादित पुस्तक 'हरिजन से दलित' में ओमप्रकाश वाल्मीकि के आत्मकथांश 'एक दलित की आत्मकथा' से मानी जाती है, जिससे हिंदी पाठकों एवं साहित्यकारों में दलित आत्मकथा के प्रति रुझान बढ़ा और यह साहित्य की प्रमुख विधा बनने लगी। इसी के प्रेरणा स्वरूप सन 1995ई. में मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथा अपने-अपने पिंजरे (भाग-1और2) प्रकाशित हुई। फिर तो दलित आत्मकथाओं का दौर ही चल पड़ा। ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा जूठन, जूठन-2, सूरजपाल चौहान की आत्मकथा तिरस्कृत, और 'संतप्त' कौशल्या बैसंत्री की आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप', डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन की आत्मकथा 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर', माता प्रसाद की आत्मकथा 'झोपड़ी से राजभवन', सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द', डॉ.. तुलसीराम की आत्मकथा दो भागो में 'मुर्दहिया' और 'मणिकर्णिका', डॉ. धर्मवीर की 'मेरी पत्नी और भेड़िये', विश्वनाथ राम की 'गोबरहा' आदि आत्मकथाएँ पिछले दो दशक में प्रकाश में आयी है।

"अपने-अपने पिंजरे से लेकर मणिकर्णिका व गोबरहा तक दलित आत्मकथा लेखन ने लम्बी यात्रा तय की है। उल्लेखनीय है कि भदेसपन के आरोपों का सुर 'मणिकर्णिका' तक आकर बदल गया। स्वयं इन आत्मकथाओं का भी आक्रोश, प्रतिशोधपूर्ण आक्रामक स्वर विकास दर्शाता है। इन आत्मकथाओं ने दलित जीवन की मूलभूत समस्याओं को भलीभांति उजागर किया है। उत्पीड़न, शोषण, गरीबी, अशिक्षा, जातिभेद, अस्पृश्यता, अंधविश्वास, कुप्रथा, पिछड़ापन, अज्ञानता,

आन्तरिक जातिवाद आदि ऐसी प्रमुख समस्याएँ हैं, जो लगभग सभी आत्मकथाओं में समान रूप से दिखायी देती हैं। ये आत्मकथाएँ सामाजिक विषमता, विसंगति के साथ व्यक्ति की उत्कृष्ट जिजीविषा को भी सामने लाती हैं।"[27] दलित आत्मकथाओं में समस्या के साथ-साथ उसके निदान के विषय पर भी बात करता है। उनके लेखन में जो विद्रोह की भाषा का प्रयोग है वह कुंठा के रूप में सामने आ रहा है यह कुंठा कई सालों के दमन का नतीजा है। दलित साहित्य के विधा को पढ़ते है तो उसकी भाषा श्लिष्ट भाषा नहीं है। इसका मुख्य कारण है कि दलित साहित्य प्रतिरोध और प्रतिक्रिया का साहित्य है। अतः इसमें आक्रोश आना स्वाभाविक है। "दलित साहित्य ने परम्परागत तत्सम प्रधान, सांस्कृतिक भाषा, काव्यशैली और प्रस्तुतीकरण को नकारकर जनसामान्य को समझने लायक सर्वग्राही भाषा का प्रयोग किया है। वह ऐसी भाषा का इस्तेमाल करता है, जो दलितों की पीड़ा, अपमान और व्यथा तथा जन-सामान्य की आशा-आकांक्षाओं के यथार्थ को सही अभिव्यक्त दे सके। इसलिए इसमें कुछ ऐसे शब्दों का भी प्रयोग हो जाता है, जो साहित्य के लिए अश्लील और वर्जित रहे हैं। जैसे- हगना, मूतना आदि। यद्यपि ऐसे शब्दों के प्रयोग स्त्री-लेखन और मार्क्सवादी लेखन में पहले भी हो चुके हैं। फिर भी कुछ आलोचक इसी कारण दलित साहित्य पर गन्दी और अश्लील भाषा के प्रयोग का आरोप लगाते हैं। उन्हें लगता है कि साहित्य का पाठ 'पवित्र' होना चाहिए; भले ही उसमें अभिजात्य संस्कारों की बनावटी भाषा का प्रयोग ही क्यों ना करना पड़े।"[28] ये शब्द आम बोलचाल की भाषा के शब्द है जिनका प्रयोग रोजमर्र की जिंदगी में करते है। सच तो यह है कि दलित समाज का यथार्थ मुख्यधारा के यथार्थ से अलग है वहाँ गन्दी नालियाँ, प्रदूषित वातावरण है उस परिवेश की भाषा को अश्लील कहना गलत है। दलित साहित्य को भाषा के आधार पर कई आरोप लगे जिसमे से "राजेन्द्र यादव जैसे लेखकों ने भी दलित साहित्य की भाषा पर सवाल उठाये हैं। लेकिन उनके सवालों का जबाब देते हुए कंवल भारती ने कहा है कि ...आलोचक अक्सर यह भूल जाते हैं कि दलित लोगों को सवर्ण लोग कैसी-कैसी गालियों से नवाजते हैं, उनके प्रति उनकी कितनी अशिष्ट भाषा होती है? और क्या वे नहीं मानते कि हिन्दू धर्म के शास्त्र दलित-शूद्रों को शिष्ट और संस्कृत भाषा बोलने का निषेध करते हैं। इस

सम्बन्ध में नाम और भाषा को लेकर दलितों के साथ अनेक अत्याचार हुए हैं। आज भी गाँवों में दलित बच्चों का कोई अच्छा नाम किसी सवर्ण बच्चे से मेल खा गया, तो उसे नाम बदलने पर मजबूर कर दिया जाता है।"[29] किसी भी साहित्य की भाषा वहाँ के परिवेश पर निर्भर करती है दलित साहित्य की भाषा परिवेश से कैसे भिन्न हो सकती है। दलित साहित्य यथार्थवादी साहित्य है, और उसका ध्येय किसी को भी गाली देने का नहीं है न ही वह विरोध का साहित्य है। दलित साहित्य व्यवस्था विरोध का साहित्य है जिससे उनका शोषण हो रहा है।

हिंदी दलित साहित्य में पहली आत्मकथा अपने-अपने पिंजरे है जिसके लेखक मोहनदास नैमिशराय है। मेरठ शहर की सामाजिक, सांस्कृतिक स्थिति की बात की गई है। इस आत्मकथा में लेखन ने धार्मिक आधार की भी पड़ताल की है। अस्पृश्यता ने दलित समाज को मानवीय एवं प्राकृतिक अधिकारों से वंचित कर दिया था और आर्थिक आधार पर भी शोषण होता था। बेगार यानि बिना मूल्य का श्रम, सामाजिक रूप से निम्न जाति से ही कराया जाता था। व्यक्ति का अपने शरीर पर भी अधिकार नहीं होता था। इसमें उसके पसंद-नापसंद का कोई ख्याल नहीं रखा जाता है और इन्हें कभी भी काम के लिए बुला लिया जाता। "गांवों, कस्बों, नगरों का जातीय विभाजन किसने किया? कौन कर गया बड़े-बड़े पक्के मकान जातिवादी हिन्दुओं के नाम और टूटे-फूटे घर-झोपडियां हाशिए के लोगों के नाम। किसने बनती हैं शहर की बस्तियां, गलिय, मोहल्लों को जातियों के खानों में। कौन है यह विध्वंसक, अराजकतावादी और भेदभावकारी मानसिकता। इससे निपटना जरुरी है। परिवारों, गलियों और मुहल्लों में आपसी तकरार और लड़ाई होने के बावजूद इन लोगों में सामूहिक एकता है।"[30]

ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा जूठन दलित समाज का ऐतिहासिक दस्तावेज है क्योंकि उसमें दलित समाज की प्रथाओं के विषय में वर्णन मिलते हैं। वाल्मीकि अपनी जाति के विषय में खुल कर बात करते है। उन्होंने कहा कि अगर मैं अपनी जाति छुपाता हूँ तो मैं ब्राहमणवादी मानसिकता को कही न कही समर्थन दे रहा हूँ। उन्होंने पूरी ईमानदारी के साथ अपने समाज की

कमियों एवं शोषण के कारणों की चर्चा की है। "इस कृति का शिल्प अवश्य सुगठित है। कथा के प्रारम्भिक अंश में जोहड़ी, बगड़, हाड-गोड, जाकत, पूली, झोटा-बुग्गी, तगाघेर, कुरड़ी, ओक, खरावे, बाहियें जैसी अंचल विशेष की शब्दावली भाषा को जीवंत बनाती है तो आगे के कथा-प्रवाह में भाषा व बुनावट इतने सहज स्वाभाविक हैं कि वे कथ्य को पूरी संवेदनशीलता के साथ अभिव्यंजित करते हैं। 'जूठन' की प्रस्तुति की सहजता व कथा का सुव्यवस्थित संयोजन उसे प्रभावी व सहज ग्राह्य बनाता है।"[31]

'मुर्दहिया' और 'मणिकर्णिका' डॉ.. तुलसीराम की आत्मकथा है जो अपने साथ-साथ समाज की स्थिति को भी बताता है। अन्धविश्वाशों, अशिक्षा और गरीबी सामाजिक पृष्ठभूमि है। जिस कारण चेचक होने पर लेखक की एक आँख अंधविश्वास के कारण चली जाती है। तुलसीराम ने कहा कि मूर्खता हमारी जन्मजात विरासत है। शब्दों की बात की जाए तो भोजपुरी के कई शब्दों को नया जीवन मिल गया हो जैसे। "जिस प्रकार 'मुर्दहिया' में दलितों के जीवन की सदियों से अव्यक्त त्रासदिया, उत्पीड़न व भेदभावपूर्ण स्थितियां उजागर हुई हैं उही प्रकार इसकी रचना प्रक्रिया में भी कई ऐसे नये शब्द सामने आये हैं,जो सामान्य भाषिक प्रयोग में अनजाने से हैं। स्वयं 'मुर्दहिया' भी ऐसा ही अप्रचलित शब्द है। मणिकर्णिका वास्तव में मुर्दहिया का ही परिवर्तित सुसंस्कारित रूप है। मृत्यु और बुद्ध की करुणा डॉ.. तुलसीराम की चेतना में गहरे तक पैठी है, जो सामाजिक विचारों में अम्बेडकर और मार्क्स से प्रभावित है।"[32]

2.2 मराठी दलित आत्मकथा परम्परा:

दलित आत्मकथा लेखन का प्रारम्भ मराठी भाषा से ही माना जाता है। इस प्रकार हिंदी दलित आत्मकथा की विकास प्रक्रिया देखने से पूर्व मराठी की आत्मकथाओं पर नजर डालनी पड़ेगी। दलितों ने अपनी सम्पूर्ण शोषण एवं पीड़ा को आत्मकथा के माध्यम से व्यक्त किया है। कविता, कहानी एवं उपन्यास में दलितों के शोषण एवं अत्याचार साहित्य का अंग बन रहा था लेकिन

आत्मकथा में किसी भी काव्य सौन्दर्य को कोई स्थान नहीं था यथार्थ एवं आत्मवर्णन मुख्य रूप से सामने आया। दलित लेखन की शुरुआत में यह भी आरोप लगा कि 'साहित्य कैसे दलित हो सकता है।' लेकिन आधुनिक समय में जो अधिकारों की लड़ाई थी उसमें इस समाज की बात नहीं होती तो साहित्य को मानतावादी नहीं कह सकते है। अन्य कई आरोपों के बाद दलित साहित्य ने अपने आप को स्थापित कर लिया। दलित साहित्य मूल रूप में मानतावादी एवं यथार्थवादी है। 'अस्मिता दर्श' त्रैमासिक पत्रिका जिसमें प्र. ई. सोनेकाम्बले के आत्मकथांश को प्रकाशित किया था इसके बाद दया पवार की 'बलुत' (1975 ई.) मराठी की प्रथम आत्मकथा मानी जाता है।

हिन्दी साहित्य में दलित लेखन मुख्यधारा के रूप में सर्वप्रथम मराठी भाषा में ही आया। भारतीय साहित्य में दलित आत्मकथा लेखन की परम्परा पुरानी नहीं है। दलित आत्मकथा साहित्य की प्रेरणा श्रोत डॉ.. भीमराव अम्बेडकर रहे हैं यद्यपि उन्होंने अपनी कोई आत्मकथा तो नहीं लिखी किन्तु 'मी कसा झालो' (मैं कैसे बना) डॉ.. अम्बेडकर की मराठी आत्मकथा है जिसे उनके संस्मरण के आधार पर 'शंकर राव खरात' ने लिखी है इसलिए संभव है कि इससे प्रेरणा लेकर दलित साहित्यकारों ने आत्मकथा की विधा को दलित साहित्य का प्रमुख अंग बनाया। यह संभावना कुछ आलोचकों ने व्यक्त की है। दलित साहित्य की अन्य विधाओं की तरह दलित आत्मकथा भी पहले मराठी में आयी। मराठी की प्रसिद्ध आत्मकथाओं में 'दया पवार' का 'बलुत' (अछूत), लक्ष्मण माने की उपरा (पराया), लक्ष्मण गायकवाड़ की उचल्या (उठाईगीर), सोन काम्बले की 'यादों के पंक्षी' शरण कुमार लिम्बाले की 'अक्करमाशी' (हरामजादा), किशोर शांताबाई की 'छोरा कोल्हाटी का' आदि प्रमुख है।

मराठी दलित साहित्य की पहली आत्मकथा 'अछूत' है जिसमें समाज में हाशिये पर धकेल दिये गये, महारों के जीवन को सच्चाई के साथ प्रस्तुत किया है। दलित जीवन की पीड़ा, पीढ़ी-दर-पीढ़ी से चली आ रही है। आज तक उन्होंने इसे स्वीकार किया है, क्योंकि पढ़ना तो दूर की बात कुछ बोलने की भी अनुमति नहीं थी। जब शिक्षा प्राप्त कर लिया तो स्वाभाविक है उसके साथ जो घटित हो

रहा है या हो चुका है उसका उन्होंने आत्मकथा के माध्यम से सबके सामने प्रस्तुत किया है। "जाहिर है 'फ्लैश बैक' शैली कही गयी यह कथा दलित नायक (दया पवार) की ही कथा है, जो उनके बचपन से लेकर लगभग पूरे जीवन के यथार्थ को व्यंजित करती है। इसके आगे-पीछे उसके दलित समाज, उसके रहन-सहन, रीति-रिवाज, राग-द्वेष, पूर्वज, दादा-दादी, माता-पिता, गैर-दलित साथी-संघाती आदि सभी हैं। पुस्तक में कोई परिच्छेद नहीं है। बिना किसी रुकावट के पूरी कथा धारा-प्रवाह कह डाली गयी है।"[33] शोषण रूपी समाज में दलित रात- दिन काम करता है फिर भी भूखा रह जाता है और जो कुछ भी नहीं करता है वह विलासी जीवन व्यतीत करता है। इसमें जो युवक गाँव छोड़कर शहर जाकर नौकरी कर रहे है उनकी स्थिति के विषय में बताया गया है कि जो शहर के गंदे काम होते है वह उनके ही हिस्से आता है।

'छोरा कोल्हाटी का' मराठी आत्मकथा है जिसके लेखक डॉ.. किशोर शांताबाई काले है जो कोल्हाटी समाज से आते है। कोल्हाटी समाज में स्त्रियों को पुरुष बारी-बारी से खरीदते रहते है। इस प्रकार बच्चे के माता का तो पता होता है लेकिन पिता का पता नहीं चल पता है इसलिए बच्चे के साथ माता का नाम ही जुड़ता है। इस समाज का प्रमुख व्यवसाय नाचना गाना है। यह आत्मकथा इस समाज के कटु सत्य को सामने लाती है। "सबसे अहम बात है ऐसे लड़कों का लांछित जीवन। प्रथमत: तो समाज द्वारा उन्हें मान्यता ही नहीं प्राप्त है, इसलिए उनकी शिक्षा-दीक्षा और अन्य बुनियादी चीजों को मुहैया करनेवाला कोई नहीं। ऐसे में जीवन में कुछ कर पाना असम्भव है। अथक संघर्ष से यदि कोई कुछ कर पाये, तो कर ले, वरना समाज द्वारा ऐसी कोई सुविधा उन्हें प्राप्त नहीं है। लड़की हुई तो परिवार में खुशियाँ मनायी जाती हैं और लड़का हुआ, तो उसके परवरिश की चिंता के कारण माता दुखी हो जाती हैं। 'छोरा कोल्हाटी का' का लेखक किशोर काले खुद 'कोल्हाटी' समाज का एक ऐसा लड़का है और माँ शांताबाई उस समाज की ऐसी ही अभागिन माँ। किन्तु ये न अकेली माँ है और न अकेला बच्चा, दोनों मिलकर पूरे कोल्हाटी समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं।"[34] दलित आत्मकथाओं से भारतीय समाज के एक नए स्वरूप को समाने रखा। उन मुद्दों को साहित्य में लाया

जो अभी तक समाज में तो थी लेकिन उन पर कोई विशेष चर्चा नहीं हो रही थी, या कहे उन पर कोई ध्यान ही नहीं दिया जा रहा था। इस आत्मकथा में स्त्री की स्थिति की चर्चा की गई जिसमें कोई भी पुरुष बोली लगाकर कोई ले जाता इसके बाद कोई दूसरा आता ले जाता जब तक वह वृद्ध नहीं हो जाती तब तक यह प्रक्रिया चलती। जो बच्चे पैदा होते वह लावारिस की जिंदगी जीने को मजबूर रहते। 'अक्करमाशी' शरण कुमार लिम्बाले की मराठी आत्मकथा है। भारतीय समाज की बड़ी विचित्र स्थिति है जिसमें मानवता के सारे प्रतिमानों को ख़ारिज कर देती है। यह आत्मकथा सभ्य समाज के लिए आइने की तरह है। यह लिम्बाले के जीवन की घटना पर आधारित है जिसमें बिना किसी लक्षण ग्रन्थ के सबके सामने रखा दिया है। यह समाज के प्रति विद्रोह तो है साथ ही साथ दलित जीवन की भीषण त्रासदी और उसके मन की स्थिति का वर्णन है। "देश के चिंतकों ने सोचा था कि ज्यों-ज्यों शिक्षा का प्रसार होगा, उससे वैज्ञानिक चेतना पनपेगी वह अपने आप ही जाति व अस्पृश्यता के भेद को मिटा देगी। यही सोचकर उन्होंने जाति-प्रथा जैसी अमानवीय प्रथाओं के खिलाफ कोई विशेष अभियान नहीं चलाया गया केवल राजनीतिक आजादी पाने को ही पर्याप्त मान लिया। जिन शिक्षण-संस्थाओं ने इस सामाजिक विषमता को समाप्त करना था और बराबरी का अहसास पैदा करना था। वही पर इस गैर बराबरी और विषमता को फलने-फूलने का मौका मिला। वहाँ भी समाज का ढ़ांचा यूं ही मौजूद रहा।"[35] भारतीय समाज ने उच्च एवं निम्न जातियों के बीच जो अन्तर था उसे कम करने के कोई अभियान नहीं चलाया। शिक्षण संस्थानों में जाति व्यवस्था वैसी ही काम कर रही थी जैसे पहले काम कर रही थी जबकि उनका दायित्व ही सबसे ज्यादा था कि वह इस समस्या को ख़त्म करे। लेखन ने दलित समाज के आन्तरिक शोषण को भी सच्चाई के साथ रखा है कैसे दलित समाज भी शोषण करने के लिए अपने से छोटी जाति ढूढ़ लेती है। "गरमी के दिन थे। मैं तथा मातंग समाज का भीमू-हम दोनों इन दिनों रोज खेलते। उसकी माँ हम दोनों पर स्नेह जतलाती। खेलते हुए एक बार प्यास लगी। इस कारण हम दोनों घर आए। मैं पहले पानी पी गया। भीमू को पानी दे रहा था कि संतामाय चिल्ला उठीं, अरे मतंग को साथ लिए क्यों घूम रहा है? उसके साथ क्यों खेल रहा है? गाँव जल गया क्या कि

इसके साथ खेलने लगा? उसे लोटा मत दे। अपवित्र हो जाएगा।' और भीमू को था डांटते हुए कहने लगीं, चल, यहाँ से निकल।"[36] शरणकुमार लिम्बाले ने भारतीय समाज की कमियों के साथ-साथ दलित समाज में शोषण की प्रवृत्ति को आत्मकथा में उजागर किया है। भूख को शरणकुमार लिम्बाले ने दलित समस्या का मुख्य कारण माना है। एक बार किसी का आटा रास्ते में गिर गया था वह उसे लेकर घर जाते है तो उनकी बड़ी सराहना होती है। अगर घर में आटा होता तो लेखक को रास्ते से आटा नहीं उठाना पड़ता। लिम्बाले की बहन भूख के कारण केला का छिलका खा रही थी तो उन्होंने उसे माना किया, लेकिन कुछ देर बाद ही वह उसे धोकर खा रहे थे। शोषणकारी व्यवस्था ने दलित समाज के लिए ऐसे हालत पैदा कर दिए थे कि दिन-रात मजदूरी के बाद भी भर पेट भोजन नहीं मिलता था।

दलित साहित्य में आत्मकथा अपने उत्कर्ष में चल रहा है। जिसमे भाषा के आधार पर शिल्प के आधार पर तथा आत्मकथा के तत्वों में प्रौढ़ता आ रही है। आत्मकथा में आत्म के साथ-साथ सामाजिक राजनैतिक एवं आर्थिक आधार भी देखने को मिलते है।

संदर्भ सूची:

1. डॉ. बेचैन, श्यौराज सिंह; संपादक-रमणिका गुप्ता, युद्धरत आम आदमी, नई दिल्ली; (अंक 41-42),1998; पृष्ठ14
2. भारती, कंवल; संपादक-रमणिका गुप्ता, युद्धरत आम आदमी, नई दिल्ली; (अंक 41-42),1998; पृष्ठ 41
3. लिम्बाले, शरण कुमार; दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र (अनुवाद-रमणिका गुप्ता); वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण 2010; पृष्ठ 42
4. कुमार, अजय; दलित पैंथर; गौतम बुक सेंटर, दिल्ली; संस्करण 2006; पृष्ठ 86
5. तिवारी, बजरंग बिहारी; दलित साहित्य एक अंतर्यात्रा; नवारुण प्रकाशन, वसुंधरा, गाजियाबाद; संस्करण 2015; पृष्ठ 23
6. नैमिशराय, मोहनदास; दलित साहित्य; साहित्य अकादमी, नई दिल्ली; संस्करण 2014; पृष्ठ 13
7. डॉ. देसाई, बापूराव; हिंदी आत्मकथा विधा का शास्त्र और इतिहास; गरिमा प्रकाशन, कानपुर; संस्करण 2011; पृष्ठ 24
8. तिवारी, बजरंग बिहारी; दलित साहित्य एक अंतर्यात्रा; नवारुण प्रकाशन, वसुंधरा, गाजियाबाद; संस्करण 2015; पृष्ठ 173
9. डॉ. तिवारी, रामचंद्र; हिंदी का गद्य-साहित्य; विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी; संस्करण 2015; पृष्ठ 499
10. वही. पृष्ठ 528
11. डॉ. श्रीवास्तव, चम्पा; हिंदी का आत्मकथात्मक साहित्य; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2013; पृष्ठ 14
12. डॉ. तिवारी, रामचंद्र; हिंदी का गद्य-साहित्य; विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी; संस्करण 2015 पृष्ठ 527-528.
13. वही, पृष्ठ 527
14. डॉ. श्रीवास्तव, चम्पा; हिंदी का आत्मकथात्मक साहित्य; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2013; पृष्ठ 37
15. सं. वर्मा, धीरेंद्र; हिंदी साहित्य कोश; ज्ञान मंडल लिमिटेड, वाराणसी; संस्करण 2009; पृष्ठ 77
16. सं. प्रसाद, कालिका; बृहत हिंदी कोश; ज्ञान मंडल लिमिटेड, वाराणसी; संस्करण 2009; पृष्ठ 123
17. राय, बाबू गुलाब; काव्य के रूप; आत्माराम एंड संस, दिल्ली; संस्करण 1958; पृष्ठ 232
18. गुप्ता, शांति स्वरूप; पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत; अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 1965; पृष्ठ 103
19. डॉ. नगेंद्र; हिंदी साहित्य का इतिहास; मयूर पेपर बैक्स, नोएडा; संस्करण 1973; पृष्ठ 595
20. डॉ. देसाई, बापूराव; हिंदी आत्मकथा विधा का शास्त्र और इतिहास; गरिमा प्रकाशन, कानपुर; संस्करण 2011; पृष्ठ 41-42
21. डॉ. मिश्रा, सरयू प्रसाद; हिंदी लेखिकाओं की आत्मकथाएँ; अमन प्रकाशन, कानपुर; संस्करण 2011;

आमुख
22. भण्डारी, मन्नू ; एक कहानी यह भी; राधाकृष्ण प्रकाशन, इलाहाबाद; संस्करण 2008; पृष्ठ 9
23. तिवारी, बजरंग बिहारी; दलित साहित्य एक अंतर्यात्रा; नवारुण प्रकाशन, वसुंधरा, गाजियाबाद; संस्करण 2015; पृष्ठ 154-155
24. डॉ. देसाई, बापूराव; हिंदी आत्मकथा विधा का शास्त्र और इतिहास; गरिमा प्रकाशन, कानपुर; संस्करण 2011; पृष्ठ 58
25. तिवारी, बजरंग बिहारी; दलित साहित्य एक अंतर्यात्रा; नवारुण प्रकाशन, वसुंधरा, गाजियाबाद; संस्करण 2015; पृष्ठ 157
26. जैन, पुनीता; हिंदी दलित आत्मकथाएं एक मूल्यांकन; सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2018; पृष्ठ 38
27. वही, पृष्ठ 31
28. ठाकुर, हरिनारायण; दलित साहित्य का समाजशास्त्र; भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली; संस्करण 2010; पृष्ठ 115-116
29. वही, पृष्ठ 116-117
30. काजल, अजमेर सिंह; दलित आत्मकथाएं वेदना, विद्रोह और सांस्कृतिक रूपांतरण; अनामिका, नई दिल्ली; संस्करण 2018; पृष्ठ 55-56
31. जैन, पुनीता; हिंदी दलित आत्मकथाएं एक मूल्यांकन; सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2018; पृष्ठ 111
32. वही, पृष्ठ 274
33. ठाकुर, हरिनारायण; दलित साहित्य का समाजशास्त्र; भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली; संस्करण 2010; पृष्ठ 468
34. वही, पृष्ठ 488
35. चन्द्र, सुभाष; दलित आत्मकथाएं अनुभव से चिंतन; साहित्य उपक्रम, दिल्ली; संस्करण 2012; पृष्ठ 134-135
36. वही, पृष्ठ 139